Vol. 14
Issue 1&2
15July 2023

ISSN 0975 1254 (PRINT)
ISSN 2249-9180 (ONLINE)
www.shodh.net

A Refereed Research Journal
And a complete Periodical dedicated to
Humanities & Social Science Research

शोध संचयन

निर्मला पुतुल के काव्य संग्रह ''नगाड़े की तरह बजते हैं शब्द'' में अपनी जमीन तलाशती आदिवासी स्त्री

बीज शब्द :

निर्मला पुतुल, नगाड़े की तरह बजते हैं शब्द, आदिवासी संस्कृति, आदिवासी कला, आदिवासी नृत्य, आदिवासी स्त्री, शहरीकरण, औद्योगीकरण, बाजारू संस्कृति, शिक्षा का अभाव, प्रकृति का दोहन, आर्थिक

झारखंड के संथाल परगना की रहने वाली निर्मला पुतुल संथाल आदिवासी समाज की नई सुशिक्षित पीढ़ी का प्रतिनिधित्व करती हैं। उनकी कवितायें आदिवासी समाज की पीड़ा, अत्याचार और शोषण के खिलाफ अपनी मुहिम को बड़ी ही शिद्दत के साथ उठाती हैं। निर्मला पुतुल का काव्य संग्रह 'नगाडे की तरह बजते शब्द' यह घोषित करता है कि जंगल में शहरी आदमी घुस आया है, जिससे सावधान रहने की जरूरत है। यह शहरी आदमी नहीं बल्कि शोषण का जीता जागता स्वरूप है। इसकी कथनी और करनी में जमीन आसमान का अंतर है। निर्मला का आरोप है ऐसे सत्ताधारी भेड़िए दबे पाँव आदिवासी संस्कृति को देखने के बहाने तो आते हैं लेकिन उनकी मंशा में सब काला ही है। वे हमारे नृत्य की प्रशंसा करके हमारी हर कला को ध रोहर बताते हैं, लेकिन वे सब सौदागर हैं जो जंगल की लकड़ी और आदिवासी कला, संस्कृति, नृत्य आदि का कारोबार चलाते हैं।

*****

डॉ० अजय सिंह चौहान
असिस्टेंट प्रोफेसर, हिंदी
फीरोज गांधी कॉलेज, रायबरेली।

निर्मला पुतुल के काव्य संग्रह ''नगाड़े की तरह बजते हैं शब्द'' में अपनी जमीन तलाशती आदिवासी स्त्री

निर्मला पुतुल की निगाह वहां तक जाती है जहां एक तरफ उनका आदिवासी समाज आज रोजी-रोटी के लिए बेहाल है। शिक्षा की मशाल पूरी तरह से बुझी हुई है। हमारे बच्चे शहरों में, गाँव में दूकान पर मजदूरी करते हैं तो वहीं दूसरी ओर हमारी लड़कियों को ये देह के सौदागर बड़े बड़े शहरों के बाजार में बिक्री के लिए खड़ी कर देते हैं। उनकी कविता आदिवासी स्त्री को केवल भोग्य वस्तु की दृष्टि से देखने वाले पुरुष-समाज पर आक्रोश प्रकट करते हुए आदिवासी लड़कियों को विभिन्न प्रकार से सावधान करती है। इतना ही नहीं मुखिया एवं जंगल के आदिवासी पुरुषों-भाईयों से आदिवासी लड़कियों की अस्मिता के पक्ष में लड़ने का आग्रह भी करती है। कवयित्री संथाली लड़कियों को सचेत करती हुई कहती हैं कि आदिवासी नारी देह का वर्णन करनेवाला निश्चय ही हमारी जमात का खाया-पीया आदमी होगा जो सच्चाई को एक धुँध में लपेटता निर्लज्ज सौदागर है।

निर्मला जी की कवितायें मात्र स्त्री के दर्द की अभिव्यक्ति एवं पुरुष व्यवस्था का विरोध ही नहीं करती अपितु स्वयं के अस्तित्व की तलाश करती आदिवासी स्त्री, आदिवासी जनजाति के प्रत्येक क्षेत्र में किये जाने वाले शोषण को भी सशक्त रूप में उघाड़ती है। कवयित्री अपने भोले आदिवासी समाज को सचेत करती है। अपनी जमीन, जंगल और संस्कृति को बचाये रखने का आवाहन करती है।

दुनिया की आधी आबादी कही जाने वाली स्त्री, विमर्शों के वर्तमान दौर में सबसे चर्चित विमर्श के केंद्र में है। हो भी क्यों न, समाज का बुद्धिजीवी वर्ग हो या साहित्यकार हो या कलाकार हो सभी इस विमर्श को हाथों-हाथ ले रहे हैं। सदियों से संतृप्त स्त्री, विमर्श की अधिकारिणी भी है। स्त्री विमर्श के कई रूप हैं जिनमें दलित स्त्री विमर्श और आदिवासी स्त्री विमर्श सर्वाधिक ध्यान दिए जाने योग्य है।हिंदी साहित्य में समय-समय पर अनेक रचनाकारों ने अपने साहित्य के माध्यम से इन विमर्शों को एक सार्थक रंग प्रदान कर सामाजिकी में हलचल पैदा की है। यह हलचल महादेवी वर्मा से लेकर निर्मला पुतुल तक में आपको पूरी शिद्दत और सन्नद्धता से दिख जाएगी। संथाली भाषा की लेखिका निर्मला पुतुल ने जनजातीय आदिवासी स्त्रियों के हक और हुकूक की पक्षधरता करते हुए अपने काव्य संग्रह को नाम दिया 'नगाड़े की तरह बजते हैं शब्द'।

सच है जब तक गगनभेदी स्वर स्त्री अस्मिता के साथ नही खड़े होंगे तब तक आदिवासी क्षेत्रों से महिलाओं की आवाज निकल कर दिल्ली तक नहीं पहुंचेगी। ये नगाड़े ही सोती हुई सत्ता, सरकार और जगती हुई पुरुषवादी मानसिकता से अपनी अस्मिता और अस्तित्व के सवाल पूछ पाएगी।

'घर, प्रेम और जाति से अलग/ एक स्त्री को उसकी अपनी जमीन के बारे में /बता सकते हो तुम बता सकते हो सदियों से अपना घर तलाशती/ एक बेचौन स्त्री को उसके घर का पता और अगर नहीं तो फिर जानते हो क्या तुम रसोई और बिस्तर की गणित से परे एक स्त्री के बारे में।'[1]

मर्दवादी सत्ता की भोगवादी प्रवृत्ति से निर्मला पुतुल की कविताएं बार-बार टकराती हैं सिर्फ यह जानने के लिए कि आधी दुनिया कही जाने वाली मैं आखिर तुम्हारी सोच और समझ में कहां टिक पाती हूं कितनी जगह है तुम्हारे दिलो-दिमाग में मेरे लिए-

'क्या हूं मैं तुम्हारे लिए एक तकिया/कि कहीं से थका मादा आया/ सिर टिका दिया खामोश खड़ी दीवार कि जब चाहा/ कील ठोंक दी/ कोई गेंद कि जब तब जैसे चाहा उछाल दी चुप क्यों हो कहो न क्या हूं मैं तुम्हारे लिए।'[2]

निर्मला पुतुल की कविताएं सवालों की बौछार करती अन्याय के विरुद्ध ललकारती हुई कविताएं हैं। वे हर पाठक के मस्तिष्क पर प्रश्नचिन्ह खड़ा करती हैं, सोचने के लिए विवश कर देती हैं। इन कविताओं से स्वानुभूति के दर्द की सुगंध आती है। वह अपने शब्दों को ऐसे फेंकती हैं कि पाठक समाज रूपी नगाड़े पर गिरकर गूंजने लगते हैं।"[3] हिंदी आदिवासी साहित्य में आदिवासी स्त्री का शोषण कारगर तरीके से औपनिवेशिक साम्राज्य में ही दिखाई पड़ने लगता है। अंग्रेजों की भोगवादी प्रवृत्ति ने आदिवासी स्त्री के प्रति मनमाना व्यवहार करने को प्रेरित किया । आदिवासी स्त्री का दैहिक शोषण करवाने में महत्वपूर्ण भूमिका स्थानीय सामंत, ठेकेदार, साहूकार एवं वनरक्षक आदि की होती थी। इस कड़वे सच को निर्मला उजागर करती हुई लिखती हैं -

'निश्चय ही वह हमारी जमात का/खाया पिया आदमी होगा
सच्चाई को धुंध में लपेटता एक निर्लज्ज सौदागर।'[4]

आदिवासी क्षेत्रों में औद्योगीकरण से आदिवासियों की आर्थिक बदहाली दूर होगी यह सोच गलत साबित हुई बल्कि उल्टा हुआ कि औद्योगिक योजनाओं ने उन्हें अपने घरों से बेघर कर दिया, उन्हें किसी प्रकार का कोई रोजगार भी नहीं दिया। आदिवासी प्रवासन की समस्या काफी हद तक शहरीकरण तथा औद्योगीकरण से जुड़ी हुई है। इस समस्या को निर्मला पुतुल ने अपनी कविताओं में बखूबी स्थान दिया है। वे कहती हैं-

कभी महसूस किया है किस तरह दहलता है/ मौन समाधि लिए बैठा पहाड़ का सीना विस्फोट से टूटकर जब छिटकता दूर तक कोई पत्थर/सुनाई पड़ी है कभी भरी दुपहरिया में हथौड़ों की चोट से टूट कर बिखरते पत्थरों की चीख/खून की उल्टियां करते देखा है कभी हवा को अपने घर के पिछवाड़े/ अगर नहीं तो क्षमा करना/ मुझे तुम्हारे आदमी होने पर संदेह है।'[5] निर्मला पुतुल को पूरी आशंका है कि तथाकथित विकास के ये रास्ते हमारे वजूद को ही न खत्म कर दें। निर्मला को ऐसा विकास नहीं चाहिए जो विकास बदले में आदिवासियों की इज्जत से खेले। 'अगर वे चाहते हैं अपनी थोड़ी सी भलाई के लिए/हम उनकी हजार बुराइयों पर पर्दा डाले बिछ जाए जब तब उनके इशारे पर उनकी खातिर/तो नहीं चाहिए हमें उनका एहसान उठा ले जाएं वे अपनी व्यवस्था/ऐसा विकास नहीं चाहिए हमें नहीं चाहिए ऐसा बदलाव।'[6]

निर्मला पुतुल राजनेताओं और ठेकेदारों के गठजोड़ से परिचित हैं। वे बखूबी जानती हैं कि हमारी जमात का कोई जब तक इन योजनाओं के निर्माण में शामिल नहीं होगा, हमारे साथ विकास के नाम पर शोषण होता रहेगा। वे अपने लोगों को इस मायाजाल से सावधान करने की पुरजोर कोशिश करती दिखती हैं-

'वे तुम्हारे विरोधी थे कल तक/दुश्मन थे तुम्हारे
पर कैसी विडंबना है वही तुम्हारे मार्गदर्शक होंगे
नीति निर्देशक होंगे वही/पुरखों के सपने रौंदते
झक झक सफेद कुर्ते वालों के पीछे मत दौड़ो मेरे भाई
उन्हें पहचानो यह तुम्हारे सपनों को भुनाने वाले लोग हैं।'[7]

शहरी अर्थव्यवस्था और वैश्वीकरण की प्रक्रिया के दबाव के फलस्वरूप आदिवासियों के परंपरागत बाजार पर गहरा प्रभाव दिखाई पड़ने लगा है। व्यापारी अधिकांशतः भोले-भाले आदिवासियों द्वारा उनके द्वारा बेची जाने वाली सामग्रियों को औने पौने दाम में खरीदकर शहरी बाजारों में ले जाकर उन्हें अच्छी कीमत पर बेचकर मुनाफा कमा रहे हैं। औद्योगीकरण की प्रक्रिया ने आदिवासियों के परंपरागत मूल्यों मान्यताओं को तहस-नहस कर जिन कुप्रवृत्तियों की ओर उन्हें धकेला है वे हैं देह व्यापार, जुआ, मद्यपान आदि। इसकी वजह से आदिवासी अपने ही देश में बेगाने होते जा रहे हैं। 'नगाड़े की तरह बजते हैं शब्द' इन छलनाओं की तह में जाकर सच्चाई का पता लगा ही लेते है- 'नहीं जानती हैं वे नहीं जानती हैं कि/कैसे पहुंच जाती हैं उनकी चीजें दिल्ली नहीं जानती कैसे सूख जाती हैं उनकी दुनिया तक आते-आते नदियां तस्वीरें कैसे पहुंच जाती हैं उनकी महानगर नहीं जानती वे नहीं जानती।'[8]

आदिवासी क्षेत्रों में शहरीकरण और औद्योगीकरण के प्रभाव से उत्तर आधुनिक चीजें धीरे-धीरे जनजातियों में समाती चली जा रही हैं। देह व्यापार इनमें प्रमुख है। निर्मला इस ओर संकेत करती हुई अपनी बहनों बेटियों को सावधान करती दिखती हैं-

'तुम्हारी भाषा में बोलता वह कौन है/ कैसा बिकाऊ है तुम्हारी बस्ती का प्रधान जो सिर्फ एक बोतल विदेशी दारू में रख देता है पूरे गांव को गिरवी और ले जाता है कोई लड़कियों को/गट्ठर की तरह लादकर अपनी गाड़ियों में तुम्हारी बेटियों को हजार पांच सौ हथेलियों पर रखकर।'[9]

वनों का आदिवासियों के जीवन तथा उनकी अर्थव्यवस्था से अटूट रिश्ता है। जंगल आदिवासियों के रहने के स्थान के अलावा जीविका का भी साधन है। भोजन, ईंधन, घरेलू सामग्री, औषधियां, पशुओं के लिए चारा और कृषि औजारों की सामग्री के लिए वे वनों पर आश्रित रहते हैं। उनकी संस्कृति भी वनों से काफी प्रभावित है। जनजातियों तथा वनों के बीच न सिर्फ आजीविका का तथा भौतिक संबंध है बल्कि सामाजिक तथा मनोवैज्ञानिक संबंध भी हैं।[10] औद्योगिकरण की यह क्रूर व्यवस्था अपने लाभ के लिए इन संबंधों को धराशाई करने पर आमादा है। निर्मला लिखती हैं-

'देखो अपनी बस्ती के सीमांत पर/जहां धराशाई हो रहे हैं पेड़ कुल्हाड़ियों के सामने असहाय/रोज नंगी होती बस्तियां एक रोज मांगेगी तुमसे तुम्हारी खामोशी का जवाब।[11]

अपनी जन्मभूमि संथाल परगना में हो रहे भीषण जंगल कटाव को लेकर निर्मला अत्यंत चिंतित दिखती हैं वे समझ रही हैं कि यह हमारी पहचान मिटाने का कारगर तरीका है इसलिए वे इस समस्या को अपनी कविताओं में शब्द देती हुई कहती हैं-

'संथाल परगना अब नहीं रह गया संथाल परगना/बहुत कम बचे रह गए हैं
अपनी भाषा और वेशभूषा में यहां के लोग/उखड़ गए हैं बड़े-बड़े पुराने पेड़/
और कंक्रीट के पसरते जंगल में खो गई है इसकी पहचान[112]

अपने अंचल से गायब होते वृक्षों का अर्थ है प्रकृति के साथ घुल-मिलकर जीने वाले आदिवासी समाज का सर्वनाश। यहां निर्मला की कविताएं पाशविकता से संघर्ष करने का औजार बनकर अपने समाज को संरक्षित करती हैं। दूसरी तरफ बाजारू संस्कृति आदिवासी मानव-मूल्यों एवं परंपराओं पर लगातार कुठाराघात कर रही है, उसे उसके अंत होने तक चैन नहीं, आदिवासियों की लोक कलाएं उनके नृत्य सब पर बाजार की नजर है-

'ये वे लोग हैं जो दिन के उजाले में मिलने से कतराते और रात के अंधेरे में मिलने को मांगते हैं आमंत्रण ये वे लोग हैं जो खींचते हैं हमारी नंगी अधनंगी तस्वीरें और संस्कृति के नाम

पर करते हमारी मिट्टी का सौदा उतार रहे हैं बहस में हमारे ही कपड़े।[13]

आदिवासियों के पास मन और बुद्धि की मानवीय प्रयोगशाला ही है जिनमें आदिम कलाओं, उत्कीर्ण पाषाण चित्रों, प्रकृति के साथ तन्मय उल्लासपूर्ण रास और नृत्य स्वरों का समायोजन और मौखिक वाचिक परंपरा का लोक साहित्य प्रारंभ से ही मौजूद है। भारतीय लोक साहित्य लोक नृत्य और लोक कलाओं का जन्मदाता रहा है हमारा आदिवासी समुदाय उनके कबीले और कुनबे।14 लेकिन इसी जन्मदाता को आज के दौर की वैश्विक होती हुई संस्कृति निगल जाने को आतुर है।

सभ्य समाज ने हमेशा से ही स्त्रियों का शोषण किया है और इस स्थिति का जिम्मेदार भी औरतों को ही बताया है। वह कभी अपनी गलतियों को स्वीकार नहीं करता बल्कि यह सिद्ध करने का प्रयास करता है कि वह औरत चरित्रहीन थी, बदचलन थी, जिस कारण उसका दैहिक शोषण होता रहा है। निर्मला पुतुल इस संदर्भ में अपनी बिरादरी को आईना दिखाती हुई कहती हैं-

'ये वे लोग हैं जो मुंह पर करते हैं मेरी बड़ाई और मेरे पीठ पीछे की फुसफुसाहटों में देते हैं बदनाम और बदचलन औरतों की संज्ञा
ये वे लोग हैं जो हमारे बिस्तर पर करते हैं हमारी बस्ती का बलात्कार और हमारी ही जमीन पर खड़े होकर पूछते हैं हमसे हमारी औकात
ये वे लोग हैं जो मेरी कविताओं में भी तलाशते हैं मेरी देह।'15

स्त्री को कभी सामाजिक भागीदारी का मौका नहीं दिया गया, उसे कभी भी भौतिक संसाधनों पर काबिज नहीं होने दिया गया, उसके हाथ में कभी भी सत्ता का हस्तांतरण नहीं होने दिया गया, संपत्ति आदि का अधिकार भी बहुत बाद में मिले जो सिर्फ हाथी के दांत ही रह गए। इन प्रश्नों से निर्मला बार-बार टकराती हैं। आदिवासी स्त्री हो या गैर आदिवासी स्त्री, सारी स्त्रियों का दुख-दर्द एक ही है। उन्हें तलाश है अभी अपनी जमीन और अपने होने का अर्थ भी।

'कहीं कोई घर नहीं होता मेरा/बल्कि मैं होती हूं स्वयं एक घर जहां रहते हैं लोग निर्लिप्त/गर्भ से लेकर बिस्तर तक के बीच कई कई रूपों में धरती के इस छोर से उस छोर तक मुट्ठी भर सवाल लिए दौड़ती भागती तलाश रही हूं/सदियों से निरंतर अपनी जमीन अपना घर/अपने होने का अर्थ।'[16]

निर्मला अच्छी तरह जानती हैं कि स्त्रियों को ये सारे अधिकार तभी मिल पाएंगे जब वे शक्तिशाली होंगी और शक्तिशाली होने के लिए उनके पास सबसे बड़ा हथियार है शिक्षा। जब तक वे शिक्षित नहीं होंगी उनके पति शिक्षित नहीं होंगे तब तक होता रहेगा ऐसे ही शोषण। इसलिए वे अपने पिता से बार-बार विनती करती हैं कि मेरा विवाह वहां नहीं करना बाबा जहां शिक्षा का चिराग न जलता हो-

'बाबा मत चुनना ऐसा वर जो पोचई और हंड़िया में डूबा रहता हो अक्सर जो हाथ लिखना नहीं जानता हो ह से हाथ उसके हाथ मत देना कभी मेरा हाथ।'[17]

निर्मला को यह भी मालूम है कि आदिवासी परिवार शिक्षा आदि पर खर्च नहीं कर सकता क्योंकि भूख के सवाल सबसे बड़े सवाल होते हैं। एक जनजातीय परिवार के लिए अपने बच्चों को स्कूल भेजना आवश्यक रूप से आर्थिक स्थिति पर निर्भर करता है। इससे इनके जीवन यापन के संघर्ष तथा पारिश्रमिक श्रम विभाजन की योजना गड़बड़ा जाती है। बहुत से मां-बाप ऐसी स्थिति में नहीं होते हैं कि वे अपने बच्चों को स्कूल भेज सकें।18 बावजूद इसके निर्मला पुतुल शिक्षा प्राप्ति की पुरजोर वकालत करती दिखती हैं। शिक्षा ही स्वावलंबन देगी शिक्षा ही गरीबी हटाएगी। शिक्षा ही संवारेगी भविष्य ,तभी हो सकेगा आदिवासी क्षेत्रों का समुचित विकास और नशाखोरी का अंत। हालांकि ये मोर्चे आसान नहीं, बड़ी कठिन है डगर पनघट की फिर भी कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन की राह पर चलते हुए निर्मला लिखती हैं।

संदर्भ ग्रंथ

1.पुतुल निर्मला (2012), नगाड़े की तरह बजते है शब्द, रूपांतर: अशोक सिंह, भारतीय ज्ञानपीठ नई दिल्ली, तीसरा संस्करण, पृष्ठ- 7-8,
2. वही, पृष्ठ 28 - 29
3. अपनी माटी (सितंबर- नवंबर 2015), संपादक - पुखराज जांगिड़ और प्रमोद मीणा, आदिवासी विशेषांक अंक19
4. पुतुल निर्मला, नगाड़े की तरह बजते है शब्द, पृष्ठ -18
5. वही, पृष्ठ 31- 32
6. वही, पृष्ठ 34- 35
7. वही, पृष्ठ 58
8. वही, पृष्ठ 11
9. वही, पृष्ठ 20
10.झा प्रफुल्ल रंजन एवम दीपशिखा (2003) भारतीय मानवशास्त्र, पीयूष बुक पब्लिकेशंस नई दिल्ली, पृष्ठ 84,
11. पुतुल निर्मला, नगाड़े की तरह बजते है शब्द, पृष्ठ -14
12. वही, पृष्ठ 26
13. वही, पृष्ठ 53
14. कमलेश्वर, (जून 2005) वर्तमान साहित्य, पृष्ठ- 15
15. पुतुल निर्मला, नगाड़े की तरह बजते है शब्द, पृष्ठ -54
16. वही, पृष्ठ 30
17. वही, पृष्ठ 50
18. श्रीवास्तव ए.आर. (प्रथम संस्करण, 2002) जनजातीय संस्कृति, मध्य प्रदेश हिंदी ग्रंथ अकादमी भोपाल पृष्ठ-185,
19. पुतुल निर्मला, नगाड़े की तरह बजते है शब्द, पृष्ठ 70 -71